

पाठ्यक्रम - १७

१७.अ

श्रावक के विकास का क्रम- प्रतिमा विज्ञान

आत्म कल्याण का इच्छुक कोई व्यक्ति जब गुरु के पास पहुँचता है तब सर्वप्रथम गुरु उसे पाँच पापों के पूर्ण त्यागरूप महाब्रतों का उपदेश देते हैं। वह भव्यात्मा शक्तिहीनता तथा चारित्रमोहनीय कर्म के उदय वशीभूत हो यदि सकल संयम धारण नहीं कर पाता है तो उसे श्रावक के योग्य ब्रतों / धर्म का उपदेश दिया जाता है।

श्रावक शब्द तीन अक्षरों के योग से बना है श्र, व, क। इसमें 'श्र' शब्द श्रद्धा का, 'व' विवेक का तथा 'क' कर्तव्य का प्रतीक है अर्थात् जो श्रद्धालु और विवेकी होने के साथ - साथ कर्तव्य निष्ठ हो वह श्रावक है।

श्रावक के तीन भेद कहे गए हैं -

१. पाक्षिक
२. व्रतिक अथवा नैष्ठिक
३. साधक

समय का मरहम हर घाव को भर देता है।
रहम से सहने वाला हर जुल्म को सह लेता है॥
संयम को धर लेने वाला सत्य को पा जाता है।
समता को पाने वाला संसार से तर जाता है॥

पाक्षिक श्रावक

जो पाक्षिक श्रावक असि, मसि, कृषि, शिल्प, सेवा और वाणिज्य रूप गृहस्थों के योग्य कार्यों को करता हुआ जिनेन्द्र भगवान का पक्ष रखता है, शक्ति को न छिपाते हुए पाँच पापों के त्याग का अभ्यास करता है, सप्त व्यसन का त्याग करता है, अष्ट मूलगुणों को धारण करता है तथा कुलाचार का पालन करता हुआ रात्रि भोजन का त्याग करता है, पानी छानकर पीता है एवं प्रतिदिन देव दर्शन करता है। किसी भी निमित्त से “संकल्प पूर्वक त्रस जीवों की हिंसा नहीं करूँगा” इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके मैत्री, प्रमोद आदि भावनाओं से सहित होते हुए हिंसा का त्याग करना पक्ष है और इस पक्ष सहित श्रावक पाक्षिक श्रावक कहलाता है।

व्रतिक अथवा नैष्ठिक श्रावक

व्रतधारी श्रावक नैष्ठिक श्रावक कहलाता है। पूरी निष्ठा से ब्रतों का पालन करने वाला, श्रावक की दर्शनिक आदि ग्यारह प्रतिमाओं (संयम स्थान) को धारण करने वाला पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या से युक्त श्रावक, नैष्ठिक श्रावक” कहा जाता है।

ग्यारह प्रतिमा उत्तरोत्तर विकास की श्रेणियाँ हैं जिनके नाम क्रमशः दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोष्ठोपवास, सचित विरत, दिवा मैथुन त्याग अथवा रात्रि भुक्ति विरत, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग तथा उद्दिष्ट त्याग है।

१. **दर्शन प्रतिमा** - पाक्षिक श्रावक के आचरणों के संस्कार से निश्चल और निर्दोष हो गया है सम्यग्दर्शन जिसका ऐसा संसार, शरीर भोगों से अथवा संसार के कारणभूत भोगों से विरक्त, पञ्च परमेष्ठी के चरणों का भक्त, मूलगुणों में से अतिचारों का दूर करने वाला, व्रतिक आदि पदों को धारण करने में उत्सुक तथा शरीर को स्थिर रखने के लिए न्यायाकूल आजीविका को करने वाला व्यक्ति दर्शन प्रतिमाधारी माना गया है।
२. **व्रत प्रतिमा** - पाँच अनुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाब्रतों का निरतिचार पालन करने वाला व्रत प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है। इस प्रकार बारह ब्रतों का पालन द्वितीय व्रत प्रतिमा से प्रारम्भ होता है। बारह ब्रतों का वर्णन आगे किया जाएगा।
३. **सामायिक प्रतिमा** - पूर्वगृहीत ब्रतों के साथ तीनों सन्ध्याओं में कम से कम 48 मिनट तक सर्व संकल्प विकल्पों को छोड़ कर आत्म चिन्तन करने वाला सामायिक प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।
४. **प्रोष्ठोपवास प्रतिमा** - पूर्व की तरह पर्व के दिनों में उपवास को व्रत के रूप में करने वाला श्रावक प्रोष्ठोपवास प्रतिमाधारी कहलाता है। पूर्व में वह व्रत को अभ्यास के रूप में करता था।

५. **सचित्त विरति** - सचित्त पदार्थों का त्याग कर साग-सब्जी आदि वनस्पति को अग्नि से संस्कारित करके खाने वाला पंचम प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है। यह पानी को भी उबालकर ही पीता है।

६. **रात्रि भुक्ति त्यागी अथवा दिवा मैथुन त्यागी** - छटवीं प्रतिमा को धारण करने वाला श्रावक मन-वचन-काय से रात्रि भोजन का त्याग करता है तथा रात्रि भोजन की अनुमोदना भी नहीं करता। अथवा दिन में मन-वचन काय से स्त्री मात्र के संसर्ग का त्याग करता है।

७. **ब्रह्मचर्य प्रतिमा** - पूर्वोक्त संयम के माध्यम से अपने मन को वश में करता हुआ मन-वचन-काय से स्त्री मात्र के संसर्ग का त्याग करने वाला श्रावक ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी कहलाता है।

८. **आरम्भ विरत प्रतिमा** - ब्रह्मचारी बन जाने के बाद संसार के कार्यों से उदासीन होता हुआ सभी प्रकार के व्यापार, कृषि कार्य, आरम्भ आदि का त्याग करने वाला आरम्भ विरती श्रावक कहलाता है।

९. **परिग्रह विरत प्रतिमा** - पहले की आठ प्रतिमाओं का पालन करने वाला श्रावक जब अपनी जमीन-जायजाद से अपना स्वामित्व छोड़ देता है, उद्योग धन्धा पुत्रों को सौंप कर गृहस्थ सम्बन्धी दायित्व से मुक्त हो जाता है। वह परिग्रह विरत प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है। यह श्रावक घर में रहता हुआ, पुत्रों द्वारा सलाह मांगने पर उन्हें सलाइ दे सकता है।

१०. **अनुमति-** विरत प्रतिमा घर-गृहस्थी एवं व्यापार कार्यों में किसी भी प्रकार के परामर्श, अनुमति देने का त्याग करने वाला अनुमति-विरत श्रावक कहलाता है। वह प्रायः घर में न रहकर मंदिर चैत्यालय में रहता है और अपना समय स्वाध्याय चिन्तन आदि में ही व्यतीत करता है तथा अपने घर एवं अन्य किसी साधर्मी बन्धु का निमन्त्रण मिलने पर ही भोजन ग्रहण करता है।

११. **उद्दिष्ट त्याग** - यह श्रावक की सर्वोत्कृष्ट भूमिका है। इस भूमिका वाला साधक गृह त्याग कर मुनियों के पास रहने लगता है तथा भिक्षावृत्ति से भोजन करता हुआ, जीवन यापन करता है। इस प्रतिमाधारी के दो भेद कहे गए हैं - क्षुल्लक व ऐलक।

इस प्रकार दार्शनिक से लेकर उद्दिष्ट त्यागी तक नैष्ठिक श्रावक के ग्यारह भेद हैं। पहली से छटवीं प्रतिमा तक के श्रावक जघन्य, सातवीं से नवमीं तक मध्यम एवं दशवीं और ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं।

३. साधक श्रावक -

जीवन के अन्त में मरण काल सम्मुख उपस्थित होने पर भोजन पानादि का त्याग कर विशेष प्रकार की साधनाओं द्वारा सल्लेखना पूर्वक देह-त्याग करने वाले श्रावक साधक श्रावक कहलाते हैं। सल्लेखना में क्रमशः शरीर और कषायों को कृश किया जाता है।

इस प्रकार श्रावक क्रमशः पापों से बचता हुआ धर्म मार्ग में प्रवृत्त होकर अन्त में समाधिमरण को प्राप्त होता हुआ सोलह स्वर्गों के वैभव को प्राप्त होता है। तथा वहाँ पर प्रभुभक्ति एवं सम्यक्त्व की आराधना करता हुआ काल व्यतीत कर पुनः मनुष्य जन्म धारण करता है। एवं आत्म शक्ति को संचित कर मुनिव्रत को स्वीकारता हुआ समस्त कर्मों का क्षय कर मुक्ति प्राप्त करता है।

जैनगीता - समणसुत्तं

जैन धर्म के विभिन्न ग्रन्थों से ग्रहण की गई गाथाओं का संकलन समणसुत्तं के नाम से क्षुल्क जिनेन्द्र वर्णी द्वारा किया गया था। इस ग्रन्थ की रचना को भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण-वर्ष के अवसर पर एक बड़ी उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया गया। आचार्य विनोबा भावे की प्रेरणा के फलस्वरूप दिनांक २९-३० नवम्बर, १९७४ को दिल्ली में वाचना हुई, जिसमें ग्रन्थ का पारायण किया गया। ग्रन्थ के पारायण के लिए चार बैठक हुई, जिसमें चारों बैठकों को आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज, आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज, आचार्यश्री तुलसीजी, आचार्य श्री विजय समुद्रसूरि जी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। चारों बैठकों की अध्यक्षता चारों आमायों के प्रमुख उपाध्याय मुनि श्री विद्यानन्दीजी, मुनि श्री सुशीलकमार जी, मुनि श्री नथमल जी एवं मुनि श्री जनकविजय जी ने की।

जैनधर्म के सभी सम्प्रदायों के मुनियों तथा श्रावकों का यह सम्मिलन विगत २००० वर्षों के पश्चात् पहली बार देखने में आया था 'श्रमण-सूक्तम्' जिसे अर्ध मागधी में 'समणसुत्तं' कहते हैं। इसमें ७५६ गाथाएँ हैं। ७ का आंकड़ा जैनों को बहुत प्रिय है। ७ और १०८ को गुणा करने पर ७५६ बनता है। सर्वसम्मति से इतनी गाथाएँ लीं।

इस ग्रन्थ में चार खण्ड हैं- १. ज्योतिर्मुख, २. मोक्षमार्ग, ३. तत्त्वदर्शन, ४. स्याद्वाद। इसमें ४४ प्रकरण हैं।

भक्तामर स्तोत्र

मन्दार- सुन्दर- नमेरु- सुपारिजात-, सन्तानकादि- कुसुमोत्कर- वृष्टि- रुदधा ।

गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रपाता, दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३ ॥

अर्थ : (गन्धोदबिन्दु-शुभमन्दमरुत्प्रपाता) सुगन्धित जल की बूँदों और सुखकर मन्द हवा के साथ गिरने वाली (उद्धा) श्रेष्ठ और (दिव्या) मनोहर (मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि:) मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के फूलों के समूहों की वर्षा (ते) आपके (वचसाम्) वचनों की (ततिः वा) पंक्ति की तरह (दिवः) आकाश से (पतति) पड़ती है/गिरती है ।

शुभ्मत्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते, लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।

प्रोद्यद्विवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या, दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम सौम्याम् ॥३४ ॥

अर्थ : (लोकत्रये) तीनों लोकों में (द्युतिमताम्) कान्तिमान् पदार्थों की (द्युतिम्) कान्ति को (आक्षिपन्ती) तिरस्कृत करने वाली (प्रोद्यद्-द्विवाकर-निरन्तर-भूरिसंख्या) उदित होते हुए सूर्यों की निरन्तर भारी संख्या वाली (दीप्त्या अपि) कान्ति से भी और (सोमसौम्याम्) चन्द्रमा के समान सुन्दर (ते विभोः) हे प्रभो! आपके (शुभ्मत्-प्रभावलय-भूरिविभा) दैदीप्यमान भामण्डल की विशाल कान्ति (निशाम् अपि) रात्रि को भी (जयति) जीत रही है ।

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग विमार्गणेष्टः, सद्वर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुमूत्रिलोक्याः ।

दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-, भाषा-स्वभाव-परिणाम गुणैःप्रयोज्यः ॥३५ ॥

अर्थ : (ते) आपकी (दिव्यध्वनिः) दिव्यध्वनि (स्वर्गापवर्ग-गममार्ग-विमार्गणेष्टः) स्वर्ग और मोक्ष को जाने वाले मार्ग के खोजने के लिए इष्ट (त्रिलोक्याः) तीनों लोकों के जीवों को (सद्वर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुः) समीचीन धर्मतत्त्व के कथन करने में अत्यन्त समर्थ और (विशदार्थ-सर्वभाषा-स्वभावपरिणाम-गुणैः प्रयोज्यः) स्पष्ट अर्थ वाली सम्पूर्ण भाषाओं में परिवर्तित होने वाले स्वाभाविक गुण से सहित (भवति) होती है ।

उन्निद्र हेम-नव-पङ्कज पुञ्ज-कान्ती, पर्युल्लसन्-नख-मयूख-शिखाभिरामौ ।

पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः, पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६ ॥

अर्थ : (जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्रदेव! (उन्निद्र -हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ति-पर्युल्लसन्-नखमयूख-शिखाभिरामौ) खिले हुए सुवर्ण के नवीन कमल समूह के समान कान्ति के द्वारा सब ओर से शोभायमान नखों की किरणों के अग्रभाग से सुन्दर (तव) आपके (पादौ) दोनों चरण (यत्र) जहाँ (पदानि) कदम (धत्तः) रखते हैं (तत्र) वहाँ (विबुधाः) देव गण (पद्मानि) कमलों को (परिकल्पयन्ति) रच देते हैं ।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूजिनेन्द्र !, धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य ।

यादृक्-प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा, तादृक्-कुतो ग्रह-गणस्य विकाशिनोऽपि ॥३७ ॥

अर्थ : (जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र! (इत्थं) इस प्रकार (धर्मोपदेशनविधौ) धर्मोपदेश के कार्य में (यथा) जैसी (तव) आपकी (विभूतिः) विभूति (अभूत्) हुई (तथा) वैसी (परस्य) किसी दूसरे की (न 'अभूत्') नहीं हुई (प्रहतान्धकारा) अन्धकार को नष्ट करने वाली (यादृक्) जैसी (प्रभा) कान्ति (दिनकृतः) सूर्य की ('भवति') होती है (तादृक्) वैसी (विकाशिनः अपि) प्रकाशमान भी (ग्रहगणस्य) अन्य ग्रहों की (कुतः) कहाँ से हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती ।

श्च्योतन्मदाविल-विलोल कपोल-मूल-, मत्त भ्रमद् भ्रमर-नाद विवृद्ध-कोपम् ।

ऐरावताभ-मिभ-मुद्धत-मापतन्तं, दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८ ॥

अर्थ : (भवदाश्रितानाम्) आपके आश्रित मनुष्यों को (श्च्योतन्-मदाविल-विलोल-कपोलमूल-मत्तभ्रमद्भ्रमर-नादविवृद्ध-कोपम्) झरते हुए मद जल से मलिन और चञ्चल गालों के मूल भाग में पागल हो घूमते हुए भौंरों के शब्द से बढ़ गया है क्रोध जिसका ऐसे (ऐरावताभम्) ऐरावत की तरह (उद्धतम्) उद्धण (आपतन्तम्) सामने आते हुए (इभम्) हाथी को (दृष्ट्वा) देखकर (भयम्) डर (नो भवति) नहीं होता ।

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त, मुक्ताफल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः ।

बद्ध-क्रमःक्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि, नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ॥३९ ॥

अर्थ : (भिन्नेभ-कुम्भ-गल-दुज्ज्वल-शोणिताक्त-मुक्ताफल-प्रकर-भूषित-भूमिभागः) विदरे हुए हाथी के गण्डस्थल से गिरते हुए उज्ज्वल तथा खून से भीगे हुए मोतियों के समूह के द्वारा भूषित किया है पृथ्वी का भाग जिसने ऐसा तथा (बद्धक्रमः) छलांग मारने के लिए तैयार (हरिणाधिपः अपि) सिंह भी (क्रमगतम्) अपने पाँवों के बीच आए हुए ते आपके (क्रम-युगाचल-संश्रितम्) चरण युगलरूप पर्वत का आश्रय लेने वाले पुरुष पर (न आक्रामति) आक्रमण नहीं करता ।

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्प्यं, दावानलं ज्वलित-मुज्ज्वल-मुत्स्फुलिङ्गम् ।

विश्वं जिधत्सुमिव सम्मुख-मापतन्तं, त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ॥४० ॥

अर्थ : (त्वन्नामकीर्तनजलम्) आपके नाम का यशोगान रूपी जल (कल्पान्तकाल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्प्यम्) प्रलयकाल की वायु से प्रचण्ड अग्नि के तुल्य (ज्वलितम्) प्रज्वलित (उज्ज्वलम्) उज्ज्वल और (उत्स्फुलिङ्गम्) जिससे तिलंगे ऊपर की ओर निकल रहे हैं, ऐसे तथा (विश्वं जिधत्सुम् इव) संसार को भक्षण करने की इच्छा रखने वाले की तरह (सम्मुखम्) सामने (आपतन्तम्) आती हुई (दावानलम्) वन की अग्नि को (अशेषम्) सम्पूर्ण रूप से (शमयति) बुझा देता है ।

विशल्या की कथा

चक्रवर्ती की पुत्री अनंगसरा किसी एक दिन अपनी सखियों के साथ उपवन में झूला झूल रही थी कि आकाश से गुजरते हुए एक विद्याधर ने उसका सुंदर रूप देखा तो उस पर मोहित हो गया । चौंकि उस समय उसकी पत्नी उसके साथ में थी । अतः पत्नि को अपने घर में पहुँचाकर वह पुनः उपवन में आया तथा अनंगसरा का अपहरण कर उसे अपने विमान में बिठाकर नगर की ओर ले जाने लगा । उस समय रास्ते में उसकी पत्नी को देखकर उसने विद्या के द्वारा अनंगसरा को घने जंगल में छोड़ दिया और स्वयं भाग गया ।

अनंगसरा बहुत समय तक जंगल में भटकती रही एवं वहाँ फल-फूल खाकर जीवन गुजारने लगी । एक दिवस कोई राजा शिकार खेलने आया और उसने अनंगसरा को पहचान लिया और उससे कहा - तुम मेरे साथ चलो । तब उसने कहा - मैंने तो देशब्रत ले लिया है । अब मैं इस जंगल से बाहर नहीं जाऊँगी । अतः आप कष्ट न करें । उन्होंने वापस नगर में पहुँचकर चक्रवर्ती को इस बात की सूचना दी । पुत्री को लाने के लिए चक्रवर्ती सेना सहित जंगल में पहुँचा । उसने क्या देखा कि एक बड़ा - सा अजगर अनंगसरा को निगल चुका है अतः तीरकमान निकालकर अजगर को मारने को उद्यत हुआ । त्यों ही अनंगसरा बोल उठी - हे पिताजी ! आप तीर न चलाएँ क्योंकि मेरे समस्त शरीर में विष व्याप्त हो चुका है । अब मेरा बचना सम्भव नहीं । यदि मैं बच भी गई तो इस जंगल के बाहर नहीं जाऊँगी ऐसा मेरा संकल्प है अतः आप व्यर्थ में हिंसा का पाप अपने ऊपर न लें । यह शब्द सुनते ही पिता की आँखों में आँसू आ गए । देखते-देखते अजगर ने उसे पूरा निगल लिया ।

धर्मध्यान पूर्वक मरण होने से वह मरकर स्वर्ग गई एवं वहाँ से आकर विशल्या नाम की राजकन्या हुई । उस कन्या के स्नान के जल में वह शक्ति थी कि उसे शरीर पर लगाने से बड़े-बड़े रोग दूर हो जाया करते थे । इसी विशल्या के लक्ष्मण के निकट पहुँचने मात्र से रावण द्वारा फेंकी अभेद्य विजया शक्ति लक्ष्मण के शरीर से भाग गई थी एवं लक्ष्मण को जीवन दान मिला था ।

**मंदिर की शोभा भगवान से है, रात्रि की शोभा चंद्रमा से है, दिन की शोभा सूर्य से है,
वृक्ष की शोभा फूल से है, तो घर की शोभा माता-पिता से है ।**

आलोचना पाठ

वंदों पांचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
 करुँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि करन के काज ॥१॥

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किए अति भारी।
 तिनकी अब निर्वृत्ति काजा, तुम सरन लही जिनराजा ॥२॥

इक वे ते चउ इंद्री वा, मनरहित सहित जे जीवा।
 तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ है घात विचारी ॥३॥

समरंभ समारंभ आरंभ, मन बच तन कीने प्रारंभ।
 कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्य धरिकैं ॥४॥

शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतैं।
 तिनकी कहुँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥

विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
 वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने ॥६॥

कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदया करि भीनी।
 या विधि मिथ्यात बढ़ायो, चहुँगति मधि दोष उपायो ॥७॥

हिंसा पुनि झूठ जो चोरी, परवनिता सों दृग जोरी।
 आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ॥८॥

सपरस रसना धानन को, चखु कान विषय-सेवन को।
 बहु करम किए मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने ॥९॥

फल पंच उदम्बर खाए, मधु मांस मद्य चित चाए।
 नहिं अष्ट मूलगुण धारे, विसयन सेये दुखकारे ॥१०॥

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये।
 कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो ॥११॥

अनन्तानुबंधी जु जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
 संज्वलन चौकड़ी गुनिए, सब भेद जु घोडश मुनिए ॥१२॥

परिहास अरति रति शोग, भय गलानि तिवेद संयोग।
 पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
 फिर जागि विषय-वनधायो, नानाविधि विष-फल खायो ॥१४॥

आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
 बिन देखी धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई ॥१५॥

तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
 कछु सुधि-बुधि नाहिं रही है, मिथ्या मति छाय गई है ॥१६॥

मरजादा तुम छिग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
 भिन-भिन अब कैसे कहिए, तुम ज्ञान विषे सब पड़ये ॥१७॥

हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी।
 थावर की जतन न कीनी, उर में करुना नहिं लीनी ॥१८॥

पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
 पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखा तैं पवन विलोल्यो ॥१९॥

हा-हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
 ता मधि जीवन के खंदा, हम खाए धरि आनंदा ॥२०॥

हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
 ता मधि जे जीव जु आए, ते हू परलोक सिधाए ॥२१॥

बीध्यो अन राति पिसायो, ईर्धन बिन सोधि जलायो।
 झाड़ ले जागां बुहारी, चिंवटी आदिक जीव बिदारी ॥२२॥

जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
 नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥

जल-मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
 नदियन बिच चीर धुवाए, कोसन के जीव मराए ॥२४॥

अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई।
 तिनका नहिं जतन कराया, गरियालैं धूप डराया ॥२५॥

पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरंभ हिंसा साजै।
 किए तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी ॥२६॥

इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
 संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिए न जाई ॥२७॥

ताको जु उदय अब आयो, नानाविधि मोहि सतायो।
 फल भुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसे करि गावै ॥२८॥

तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
 हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है ॥२९॥

जो गांवपती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
 तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥३०॥

द्रौपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
 अंजन से किए अकामी, दुख मेट्यो अंतरजामी ॥३१॥

मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो।
 सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥३२॥

इंद्रादिक पदवी नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
 रागादिक दोष हरीजै, परमात्म निज-पद दीजै ॥३३॥

दोषरहित जिनदेव जी, निजपद दीज्यो मोय।
 सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय ॥३४॥

अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरि' आप जिनन्द।
 ये ही वर मोहि दीजिए, चरन शरन आनन्द ॥३५॥

अपने स्वार्थ को छोड़ दीजिये फिर कुछ भी कार्य
 कर लिजिये इसे ही सत्वेषु कहते हैं।

पाठ्यक्रम - १७

१७.ब

संसार दुःख का मूल कारण - मिथ्यात्व

तत्त्वों पर यथार्थ श्रद्धान नही होना ही मिथ्यात्व है अथवा सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धान न करना या झूठे देव, शास्त्र गुरु का श्रद्धान करना मिथ्यात्व है।

विपरीत या गलत धारणा का नाम मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के उदय से जीव को सच्चा धर्म नहीं रुचता है। जैसे-पित्त के रोगी को दूध भी कड़वा लगता है।

मिथ्यात्व के दो भेद होते हैं- गृहीत एवं अगृहीत।

गृहीत मिथ्यात्व - पर के उपदेश आदि से कुदेवादि में जो श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसे गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं।

अगृहीत मिथ्यात्व - अनादिकाल से किसी के उपदेश के बिना शरीर को ही आत्मा मानना व पुत्र, धन आदि में अपनत्व करना, अगृहीत मिथ्यात्व है।

मिथ्यात्व के पाँच भेद भी होते हैं।

१- विपरीत :- जीवादि पदार्थों में विपरीत मान्यता एवं अधर्म को धर्म मानना ही विपरीत मिथ्यात्व है। जैसे - शरीर को ही आत्मा मानना।

२- एकान्त :- जीवादि पदार्थों में पाए जाने वाले अनेक धर्मों में से एक धर्म को ही स्वीकार करना एकान्त मिथ्यात्व है। जैसे पदार्थ को नित्य मानना।

३- विनय :- सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, एवं अन्य मिथ्या देव, शास्त्र, गुरु, को समान मानना विनय मिथ्यात्व है। जैसे अरिहंत देव तथा अन्य देवों की समान विनय करना।

४- संशय :- सद्-असद् धर्म में सच्चे धर्म का निश्चय नही होना संशय मिथ्यात्व है। जैसे स्वर्ग-नरक होते भी हैं या नहीं।

५- अज्ञान :- जीवादि पदार्थों के समझने का प्रयास न करना अज्ञान मिथ्यात्व है। अथवा पुण्य-पाप का ज्ञान ही नहीं होना। जैसे रात्रि में भोजन करने से पाप का बंध होता है अथवा नहीं।

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को छोड़कर अन्य कुदेव में देव बुद्धि, कुशास्त्र में शास्त्र बुद्धि, कुगुरु में गुरु बुद्धि एवं अधर्म में धर्म बुद्धि का होना 'मूढ़ता' मानी जाती है। इन मूढ़ताओं से युक्त व्यक्ति मिथ्यादृष्टि माना जाता है। इन कुदेव आदि का सहारा पत्थर की नाव के समान संसार समुद्र में डुबाने वाला, घोर दुःखों का कारण है। अतः मूढ़ताओं का संक्षिप्त स्वरूप भी कहा जाता है।

देव-मूढ़ता- जो राग-द्वेष रूपी मल से मलीन (रागी-द्वेषी) है और स्त्री, आभूषण, गदा, तीर-कमान आदि अस्त्र-शस्त्र रूप चिह्नों से जिनकी पहचान होती है, वे कुदेव हैं। वीतराग सर्वज्ञ देव के स्वरूप को न जानते हुए ख्याति, लाभ, पूजा की इच्छा से अथवा भय से कुदेवताओं की आराधना करना देव-मूढ़ता है।

लोक मूढ़ता - धर्म समझकर गंगा-जमुना आदि नदियों में स्नान करना, बालू पत्थर आदि का ढेर लगाना, पर्वत से गिरकर मरना, अग्नि में जल जाना, पृथ्वी, अग्नि, वट वृक्ष, पीपल, तुलसी आदि की पूजा करना लोक मूढ़ता है।

धर्म मूढ़ता - जो राग-द्वेष रूप भाव हिंसा सहित तथा त्रस स्थावर जीवों के घात स्वरूप द्रव्य हिंसा से सहित संसार वर्धक क्रियाएँ हैं, उन्हें कुधर्म कहते हैं। ऐसे कुधर्म में धर्म बुद्धि, आस्था होना धर्म मूढ़ता है।

शास्त्र मूढ़ता - हिंसक यज्ञ, बलि आदि के प्ररूपक शास्त्र, महान पुरुषों को दोष लगाने वाले एवं उनके विकृत रूप को प्रदर्शित करने वाले शास्त्र कुशास्त्र हैं। कुशास्त्र में सत् शास्त्र की बुद्धि होना शास्त्र मूढ़ता है।

गुरु मूढ़ता- जो भीतर से राग-द्वेषादि परिणाम रखते हैं, बाहर धन, अम्बर (वस्त्र) आभूषण धारण करते हैं तथा स्वयं को महात्मा कहते हुए अनेक प्रकार के मिथ्या भेष को धारण करते हैं कुगुरु कहलाते हैं। अज्ञानी लोगों के चित्त में चमत्कार अर्थात् आश्चर्य उत्पन्न करने वाले ज्योतिष, मन्त्रवाद आदि को देखकर वीतराग, सर्वज्ञ द्वारा कहा हुआ जो धर्म है उसको छोड़कर ख्याति लाभ-पूजा के लिए खोटा तप करने वाले, परिग्रह आरंभ और हिंसा सहित, संसार चक्र में भ्रमण करने वाले, पाखण्डी साधु, तपस्वियों का आदर, सत्कार, भक्ति पूजा आदि करना गुरु मूढ़ता है।

शरीर धारी प्राणियों का मिथ्यात्व के समान अन्य कुछ अकल्याणकारी नहीं हैं।

निमित्त उपादान

जो भी कार्य संपन्न होता है, वह उपादान व निमित्त की मैत्री पूर्वक संपन्न होता है। जैसे अध्यापक पढ़ाने में निमित्त है तो उपादान विद्यार्थी का अपना ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम है। एक अध्यापक पक्षपात रहित होकर दो बालकों को शिक्षण देता है। पुस्तक सामग्री दोनों को समान सुलभ है। दोनों श्रम भी करते हैं फिर भी उनमें एक बालक अल्पश्रम से विद्वान बन जाता है और दूसरा बालक अधिक श्रम करने पर भी विद्वान नहीं बन पाता। यह अपनी-अपनी उपादान की योग्यता है। यदि उपादान की योग्यता है तभी निमित्त कोई कार्य कर सकता है अन्यथा नहीं। जैसे- तोते को पढ़ाने से तोता पढ़ सकता है किंतु सौ शिक्षक मिलकर भी उल्लंघन बगुले को नहीं पढ़ा सकते।

निमित्त उपादान को उभारता है। निमित्त का भी कार्यसिद्धि में बड़ा योगदान है। घड़ा मिट्टी से ही बनता है। अतः मिट्टी में घड़े बनने की योग्यता है और कुंभकार निमित्त है। पर निमित्त में इतनी शक्ति है जो आकार देना चाहे वह दे सकता है। बड़ा घड़ा बनाना है तो बड़ा बना देगा। सुराही बनाना है तो सुराही बना देगा, पर गीली मिट्टी से ही बना सकेगा। सूखी मिट्टी से घड़ा नहीं बना सकता। बालू का भी घड़ा नहीं बना सकता। यहाँ उपादान की कमी है। निमित्त के अनुसार ही उपादान की शक्ति को परिणमन करना पड़ता है। द्रव्य की उपादान शक्ति निमित्त के अभाव में पंग है। मिट्टी पंग है। वह यह नहीं कहती कि मेरा सकोरा बनाओ या मेरा मटका बनाओ। वह तो कहती है कि कुंभकार की जो इच्छा है सो बनाए।

इसी को निमित्त उपादान की मैत्री कहते हैं। उपादान में कार्य होता है निमित्त की सहायता से। उपादान की योग्यता नहीं और निमित्त हजारों हों तो भी कार्य नहीं हो सकता और उपादान की योग्यता है, निमित्त की अनुकूलता नहीं तो भी कार्य संपन्न नहीं होता। जैसे सुमेरु पर्वत के नीचे की मिट्टी निमित्त के अभाव में कभी घट रूप परिणमन नहीं करती।

निमित्त दो प्रकार के होते हैं : (१) प्रेरक निमित्त- अध्यापक, ड्राइवर

(२) उदासीन निमित्त- लाइट, पुस्तक, रोड(सड़क)

भजन

जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र बोलिए।

जय जिनेन्द्र की ध्वनि से अपना मौन खोलिए॥

सुर असुर जिनेन्द्र की महिमा को नहीं गा सके।

और गौतम स्वामी न महिमा का पार पा सके॥

जय जिनेन्द्र बोलकर जिनेन्द्र शक्ति तौलिए।

जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र बोलिए॥

जय जिनेन्द्र ही हमारा एक मात्र मंत्र हो।

जय जिनेन्द्र बोलने को हर मनुज स्वंत्र हो॥

जय जिनेन्द्र बोल बोल खुद जिनेन्द्र हो लिए।

जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र बोलिए॥

पाप छोड़ धर्म जोड़, ये जिनेन्द्र देशना।

अष्टकर्म को मरोड़, ये जिनेन्द्र देशना॥

जाग! जाग! जाग! चेतन, बहुकाल सो लिए।

जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र बोलिए॥

हे जिनेन्द्र ज्ञान दो मोक्ष का वरदान दो।

कर रहे हैं प्रार्थना हम प्रार्थना पर ध्यान दो॥

जय जिनेन्द्र, बोलकर! हृदय के द्वार खोलिए।

जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र बोलिए॥

श्वासों की बस्ती में मौत का रहवास है।

जिन्दगी तो केवल एक विश्वास है॥

नजरें तेरी बदली तो नजारे बदल गए।

कश्ती ने बदला रुख तो नजारे बदल गए॥

॥ छहढाला ॥

पहली ढाल

तीन भुवन में सार, जीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँत्रियोग सम्हारिकै ॥

(सोरठा)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुख तैं भयवन्त ।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार ॥१ ॥
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण ।
मोह-महामद पियो अनादि, भूल आप को भरमत वादि ॥२ ॥
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा ।
काल अनन्त निगोद मङ्गार, बीचो एकेन्द्री तन धार ॥३ ॥
एक श्वास में अठ-दश बार जन्म्यो-मर्यो-भर्यो दुखभार ।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥४ ॥
दुर्लभ लहि ज्यों चिन्नामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी ।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धर-धर मर्यो सही बहुपीर ॥५ ॥
कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निषट अज्ञानी थयो ।
सिंहादिक सैनी हैं कूर, निबल पशु हति खाये भूर ॥६ ॥
कबहूँ, आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अति दीन ।
छेदन-भेदन भूख-पियास, भारवहन हिम आतप त्रास ॥७ ॥
वथ-बन्धन आदिक दुःख घने, कोटि जीभ तैं जात न भने ।
अति संकलेश भाव तैं मर्यो, घोर श्वभ्रसागर में पर्यो ॥८ ॥
तहाँ भूमि परसत दुःख इसो, बिछू सहस डसैं नहिं तिसो ।
तहाँ राधश्रोणित वाहिनी, कृमिकुल कलित देहदाहिनी ॥९ ॥
सेमर तरु दल जुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदाँ तत्र ।
मेरुसमान लोह गलि जाय, ऐसी शीत-उष्णता थाय ॥१० ॥
तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड ।
सिंधुनीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ॥११ ॥
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय ।
ये दुःख बहु सागर लौं सहै, करमजोग तैं नरगति लहै ॥१२ ॥
जननी उदर वस्यौ नव मास, अंग-सकुचतैं पाई त्रास ।
निकसत जे दुःख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर ॥१३ ॥
बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी रत रह्यो ।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखे आपनो ॥१४ ॥
कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धैर ।
विषय चाह-दावानल दहो, मरत विलाप करत दुःख सह्यो ॥१५ ॥
जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यगदर्शन बिन दुःख पाय ।
तहतैं चय थावर-तन धैर, यों परिवर्तन पूरे करै ॥१६ ॥

कमल खिलता है दिन में कुमुदनी रात में खिलती, सूर्योदय होने पर खुशी प्रभात से मिलती ॥
यह सब खुशियाँ तो नष्ट प्रायः हैं मेरे बन्धुओं, जीवन की सच्ची खुशी तो गुरु के चरणों में ही मिलती है ॥

दूसरी ढाल (पद्धरि छंद)

ऐसे मिथ्यादृगज्ञानचरण, वश भ्रमत भरत दुःख जन्म-मरण ।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान ॥१ ॥
जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरथैं तिन माँहिं विपर्ययत्त्व ।
चेतन को है उपयोगरूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप ॥२ ॥
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी हैं जीव चाल ।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान ॥३ ॥
मैं सुखी-दुःखी मैं रंक-राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव ।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ॥४ ॥
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान ।
रागादि प्रगट जे दुःख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन ॥५ ॥
शुभ-अशुभ बंध के फल मङ्गार, रति-अरति करै निजपद विसार ।
आतमहित हेतु विरागज्ञान, ते लखे आपको कष्टदान ॥६ ॥
रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवस्वरूप निराकुलता न जोय ।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान ॥७ ॥
इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्याचरित ।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सुतेह ॥८ ॥
जो कुगुरु कुदेव कुर्धर्म सेव, पोषै चिर दर्शनमोह एव ।
अन्तर रागादिक धैरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह ॥९ ॥
धाँरैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्मजल उपल नाव ।
जे रागद्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन ॥१० ॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भवभ्रमण छेव ।
रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस-थावर मरण खेत ॥११ ॥
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुर्धर्म, तिन सरथैं जीव लहै अशर्म ।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ॥१२ ॥
एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त ।
कपिलादि-रचित श्रुत को अभ्यास, सोहै कुबोध बहुदेन त्रास ॥१३ ॥
जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविधविधि देहदाह ।
आतम-अनात्म के ज्ञानहीन, जे-जे करनी तन करन छीन ॥१४ ॥
ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आत्म के हित पन्थ लाग ।
जगजालभ्रमण को देहुत्याग, अब दौलत निज आत्म सुपाग ॥१५ ॥

दुर्लभ मनुष्य जन्म को जहर आदि खाकर शरीर को
खो देना तो आत्मघात है, जो सबसे बड़ा पाप है ।